International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 341-344

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 341-344
www.allresearchjournal.com
Received: 04-11-2015
Accepted: 07-12-2015

सुमन
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
डी•ए•वी• कॉलेज अबोहर,

Correspondence
सुमन
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
डी•ए•वी• कॉलेज अबोहर,

'महाभोज' दलित चेतना का उत्कर्षक

सुमन

साहित्य समाज का दर्पण होता है। वह समाज के विभिन्न पक्षों में छुपी भावनाओं व विचारों को उजागर कर लोगों के समक्ष रखता है। वह समाज की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समस्या अथवा बात व घटना की मूकता को शब्दों की शक्ति द्वारा वाणी प्रदान करता है। यह भूत की खामियों को पूरा करके वर्तमान को सशक्त बनाता है ताकि भविष्य में नया तथा सार्थक आयाम स्थपित किये जा सके एवं एक भव्य समाज का निर्माण हो सके।

वस्तुतः समकालीन हिन्दी साहित्य में परिवर्तन को अपने परिवेश की उपज मानना होगा। देश का स्वाधीन होना, शिक्षा का प्रचार प्रसार, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन व पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क तथा सहचर्य में दृढता आ जाने और व्यक्ति एवं समाज का उत्तरोत्तर सचेत बनना आदि के परिणाम स्वरूप हिन्दी कथा साहित्य को नवीन पृष्ठभूमि प्राप्त हुई है तथा सदियों से दमित, पीडित तथा अछूत वर्ग के लोगों में भी जागृति की भावना पैदा हुई है। स्वाधीनतापूर्व और स्वाधीनता के पश्चात अब तक के लेखन में विमर्श की अभिव्यक्ति अवश्य मिलती है। असल में हिन्दी के समकालीन उपन्यासों तथ कहानियों में विमर्शमूलक लेखन का सुदृढ अभियान आरत्भ हुआ है।

साहित्य के सन्दर्भ में 'विमर्श' संकल्पना आधुनिक काल की देन है। विगत दो दशकों से यह संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त मिलती है। 'विमर्श' शब्द मूलतः गहन सोच विचार, विचार विनिमय, चिन्तन मनन, परामर्श आदि का द्योतक है। गत वर्षों में होने वाली चर्चाओं, बहसों, सहमति, असहमतियों में उठते सवालों ने दलित विमर्श को उभारा है जो आज हिन्दी कथा साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। सहस्त्र वर्षों से शोषित, पीडित, अपमानित हो रहे दलित जाति के लोगों ने भी अपने हालातों को सुधरने तथा इस भेदपूर्ण व्यवस्था का विरोध करने के लिए साहित्य के पथ को ही स्वीकार किया। अपने लेखन के द्वारा साहित्य जगत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज में इन्होंने क्रांति का ढंका बजा दिया है तथा लोगों को उनकी विचार धारा बदलने को विवश कर दिया है।

'दलित विमर्श' में पहले हमें 'दलित' शब्द पर विवेचन करना होगा। दलित का अर्थ होता है–जिसका दलन व दमन हुआ है, दबाया गया है, पीडित, उत्पीडित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित आदि। दलित साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ श्यौराज सिंह 'बेचैन' दलित की व्याख्या करते हुए कहते है कि "दलित वह है जिसे का मानना है कि, "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है तथा तिसे कठोर और गन्दे काम करने के लिए के लिए बाध्य किष गया हो।"

इस प्रकार इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज–व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण–व्यवस्था में जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा।

दलित शब्द साहित्य के साथ जुडकर एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है, जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करता है। दलित चिन्तक कँवल भारती की धारणा है कि, "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीडा को रूपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है।"

किन्तु यह दलित साहित्य की संकीर्ण परिधि है। दलित साहित्य 'जन साहित्य' है यानि मास लिट्रेचर। सिर्फ इतना ही नही लिट्रेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोश जनित संघर्ष भी है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य। दलितों की वास्तविक स्थिति केवल दलितों द्वारा रचित साहित्य में ही उजागर नहीं होता बल्कि दलितेतर हिन्दी कथाकारों ने भी साहित्य के सृजन के माध्यम से समाज के इस तिरस्कृतवर्ग

के उत्थान तथा इनकी समस्यों के निराकरण का प्रयत्न किया है। जिनमें जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न आपना', 'जमीन अपनी तो थी', 'गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', श्री लाल शुक्ल का 'राग दरवारी', मन्नू भण्डारी, राही मासूम रजा आदि उपन्यासकारों ने व्यापक रूप से दलितों की यथार्थ स्थिति का और समाज में उनकी कष्टपूर्ण व विभीषण हालातों का यथार्थमयी रूप से सजीव अंकन किया है।

इन रचनाकारों ने अपनी कृतियों में दलित वर्ग के प्रत्येक पक्ष को यथार्थमयी रूप से प्रस्तुत करने का सतुत्य प्रयास किया। साथ ही इस धारणा को कि दलित व्यक्ति ही वास्तविक दलित स्थिति व हालातों का सजीव चित्रांकन कर सकता है को खण्डित करने की सफल कौशिश की है। इनकी रचनाओं में दलितों के वैचारिक जागरण का परिचय मिलता है। इनमें आत्मचेतना एवं अस्तित्व बोध के फलस्वरूप दलितों में विकसित होती जारही विद्रोही चेतना का भी प्रस्तुतीकरण किया है। शिक्षा प्राप्ति की समस्या, अन्ध विश्वास, अज्ञानता, छूआछात से त्रस्त, दलितों के प्रति अन्याय ग्रस्त व्यवहार, जाति भेदभाव, धर्मान्धता, अन्याय अन्यान्य बातों को तथा इन कृरीतियों व सामाजिक एकरूपता के विकृत रूप को दिखाने का भरपूर प्रयास किया गया है हिन्दी कथा साहित्य में।

हिन्दी कथा साहित्य में दलित वर्ग के समस्त पक्षों, समाज में उनकी सबसे निम्न तथा दयनीय स्थिति, अभाव परिपूर्ण, अपने ही देश मेंगुलाम और अजनबी पन से ग्रस्त, शिक्षा के अभाव के कारण गलत नीतियों के शिकार व अन्धविश्वास में भटकते हुए इस दमनीय और शेषित दलित जाति की अनेकानेक मुश्किलों का विशद अंकन हिन्दी जगत की महान कथाकार मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास 'महाभोज' में किया है। इस उपन्यास में उन्होने दलित वर्ग की बहुविध मुसीबतों तथा परिस्थितियों का चित्रण बेबाकी से सामने रखा है। उन्होने दलित वर्ग के युवकों में अन्याय के विरूद्ध बढते विरोद्ध व साहस के साथा खडे होने तथा अपने अधिकारों के हनन के प्रति विद्रोह करते हुए जागृति के पथ की ओर अग्रसर दिखाया और यहभी स्पष्ट होता है कि किस प्रकार साहित्य समाज का स्वरूप बदल कर उसे नया रूप देता है।

मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' उपन्यास इस धारणा को तोडता है कि महिलाएँ या तो घर परिवार के बारे में लिखती है या अपनी भावनाओ की ही दुनिया में जीती–मरती है। 'महाभोज' विद्रोह का राजनैतिक उपन्यास है। हिन्दी की इस महान कथाकार ने अपनी लेखनी के माध्यम से हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रदान करके इसको समृद्ध किया है और समाज की अनेक भ्रांतियों को तोड कर तथा नई परम्पराओं तथा रीतियां के निर्माण का भी प्रयास किया है। इन्होंने बहुत सारी कहानियां और उपन्यासों की रचना करके अपने व्यक्तित्व को निखारा। भारतीय समाज और उसके वास्तविक हालातों का प्रखर वाणी में प्रस्तुतीकरण किया है। इन्होने 'महाभोज' के अतिरिक्त 'आप का बंटी' तथा 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की रचना की। 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास इन्होने अपने पति राजेन्द्र यादव के साथ संयुक्त रूप से लिखा। इनकी कहानियां भी व्यक्ति व समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर करती है और मानव की मनोव्यथा को दर्शित करती है।

किन्तु महाभोज में मन्नू भण्डारी ने एक निम्न तथा समाज के उपेक्षित जाति को केन्द्र में रख कर राजनीतिक परिस्थितियों, उनकी सामाजिक दयनीय स्वरूप को प्रकट किया है जो अत्यन्त सत्य जान पडता है। इन्होंने दलित समाज के वास्तविक वप को उभार कर दलितों की अपनी विद्रोही मानसिकता को व्यक्त किया है कि इस सभ्य समाज में सत्य का साथ देने वाले बिसेसर जैसे लोगों को जो सिर्फ अपनी मूल आवश्कताओं व मेहनत का ही फल पाना चाहते है और अपने कर्म का मूल्य प्राप्त करना ही बस उनकी सन्तुष्टी है को भी नही जीने देते।उनके मूल्यों व आत्मा की चीत्कार को हाशिये पर डाल कर संस्कृति व ज्ञानवान होने के साथ भी सभ्य समाज की परिधि से बाहर निकाल दिया जाता है। 'महाभोज' में दलितोंके साथ हुए अन्याय तथा बिसेसर की मौत को वोट का मुद्दा बना कर अपना स्वार्थ साधना, दलितों के प्रति घृणा, दोहरी नीति व भेदभाव पूर्ण स्थिति के हेतु इन लोगों में आक्रोश बढा है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए है। जैसे ओमप्रकाश बाल्मिकी जी ने अपना वक्तव्यदिया है कि, "हमारी पीडी का एहसास उन लोगों को कैसे हो सकता है जिन्होंने कभी नफरत और ईर्ष्या की महीन नोकों का दर्द अपने बदन पर महसूस नही किया हो, जिने कभी अपमान महसूस कर सकता है।"

ऐसी स्थिति मन्नू भण्डारी के इस उपन्यासमें देखने मिलती है कि दा साहब तथा सुकुल बाबू जैसे लोगों को सिर्फ अपना रूतबा और कुर्सी से मतलब है। वह इन शोषित व पीडित लोगों से सिर्फ वोट और जीतने की आकांक्षा रखते है।

जनतन्त्र में साधारण जन की जगह कहाँ है? तथा उसमें भी इन समाज के पीछडे वर्ग जो शताब्दिओं से प्रताडित व कुण्ठाओं से ग्रस्त है का स्थान कहाँ नीयत है? राजनीति और नौकरशाही के सुत्रधारों ने सारे ताने बाने को इस तरह उलझा दिया है कि आम तथा गरीब जनता को फँसाने और घोटने का जाल बन कर रह गया है।

महाभोज का आरम्भ ही एक दलित जाति के व्यक्ति जो परिस्थितियों से हारा हुआ, हर तरफ से मायूस, शिक्षित होने पर भी बेरोजगार, सत्य का कठोर पक्षधर होने पर भी झुठा, साफ तथा पाक–पवित्र और ईमानदार होने पर भी बदनाम व्यक्ति बिसेसर की मृत्यु से होता है। वह कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति नही है किन्तु उसकी मृत्यु भी एक सामान्य सी बात थी क्योंकि वह समाज की सबसे नीची तथा तिरस्कृत वर्ग से सम्बन्धित था। उनका गाँव सरोहा जो हरिजन लोगों का ही गढ था। किन्तु उसकी असामयिक मौत अधिक महत्वपूर्ण इस लिए बनी कि गाँव में चुनाव होने वाले थे। हर राजनीतिक दल बिसू की मौत का लाभ उठाना चाहता था। लेकिन किसी को यह चिन्ता नही थी कि जो मरा है उसके माँ–बाप की क्या हालत होगी। समस्त दल अपना स्वार्थ भुनाने में लगे होते हैं। चुनाव में खडे उस इलाके के नेता सुकुल बाबू के भाषण से हरिजन लोगों पर हो रहे अत्याचार का स्पष्ट प्रस्तुतीकरण होता है–"क्या दोष था इन हरिजनों का? यही ना कि सरकीरी रेट पर मजदूरी मांग रहे थे। गुनाह था ये? पर शायद था–तभी तो जिन्दा जला दिये गये और जिन्होंने जलाया था उन पर उंगली उठाने वाला भी कोई नही था। विचारे बिसू ने उंगली उठाने की कौशिश की तो हमेशा के लिए चुप करा दिया गया उसे।" इन शब्दों से ये पता चलता है कि दलित वर्ग पर सवर्ण तथा उच्च वर्गीय लोग कितना अत्याचार व शोषणकरते है तथा ये तथ्य भी साफ हो जाता है कि सरकार इन दबे वकुचले लोगों के उत्थान के लिए कुछ करती है तो वह लाभ उन तक पहुँच ही नहीं पाता और यदि पहुँच जाये तो भी उनका भला न होकर नुक्सान दायिक ही बन जाता है। जैसे इस उपन्यास में दिखाया भी गया है कि जब नयी योजना बनती है तो गाँव के दलित (हरिजन) लोग उच्च वर्ग के जमींदारों से निर्धारित मूल्य पर अपनी मजदूरी मांगते हैं जो इतनी बंरहमी और निर्दयता से उनकी आवाज दबाने के लिए उन्हे जिन्दा जला दिया गया। अफसोस की बात यह है कि इस लोकतान्त्रिक देश में कोई उन बेगुनाह मृत लोगों को इन्साफ दिलाने वाला भी कोई व्यक्ति आगे नहीं आता है। किन्तु जो कष्ट भोगता है उसे ही वास्तविक पीडा का एहसास होता है। इसलिए बिसू उठता है इस अन्याय के विरूद्ध इन्साफ मांगने हेतु तथा उसका साथ देता है बिन्दा। किन्तु परिस्थितियां इस तरह की उत्पन्न कर दी जाती है कि एक की हत्या कर दी जाती है और दूसरे को उसमें फँसाने की साजिश की जाती है। भले ही सुकूल बाबू का दिया गया वह भाषण वोट हासिल करने के उद्देश्य से कहा गया था किन्तु यह दलितों की हालत, उनकी चेतना तथा उसका परिणाम प्रस्तुत करता है कि किस तरह राजनीतिक मौकाप्रस्त लोग अपने हित साधने के लिए किसी भी हद तक जा सकते है तथा उन्हे सामान्य जन से कोई सरोकार नहीं है। यह सब लोग उनके लिए साधन है। प्रयोग करो तथा

फेंक दो। चाहे उन्हें कोई सुविधा प्राप्त हो या न हो। वह किस स्थिति में है तथा यहाँ तक कि दलित वर्ग इन स्थितियों के सबसे ज्यादा शिकार बनते हैं और वह हर अमानवीय व्यवहार के भुगत भोगी है। यही यातना,पीडा तथा कष्ट ने उन लोगों का आत्म चेतना, आत्माभिमान, एवं आत्मबोध की प्रेपणा प्रदान की। यह प्रश्न कि मैं कौन हूँ? मेरा क्या वजूद है? यही सब भावनाओं ने इस पीछडे वर्ग की अस्मिता की खोज को अग्रसर किया। इसी कारण बिसू जो पढा लिखा व सुशिक्षित व्यक्ति है और वह अपने स्वार्थ के लिए ही नहीं बल्कि अपने समस्त जाति के लिए लडने को तैयार हो जाता है। किन्तु फिर भी उसकी जाति के लोगों को उसकी बांतें तथा सोच समझ में नहीं आती कारण कि हरिजन जाति के लोगों का अशिक्षित होना।उन लोगों का अज्ञान तथा अशिक्षा ही उनकी इस हालत की कुछ हद तक जिम्मेवार है जिस कारण वे अपने अधिकारों को पूरी तरह नहीं जानते और सवर्ण लोगों को अत्याचारों को आजीवन सहन करते आ रहे है। उन्हों ने अपने बल पर कोई निर्णय करने की समर्था का सृजन नहीं किया है। वह उन भेडों के झुण्ड के समान है जिन्हें कोई भी थोडे से बनावटी हमदर्दी के शब्द बोल दे तो उसके पीछे ही हों ले। जैसे कि सुकूल बाबू का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि "अब बचे हुए सारे वोट अपने पक्ष में पडेगे तब बात बनेगी। पर इन नीची जाति वालों का भरोसा नहीं है। घेर– घार करभी लाने पर भी कुछ तो वोट देने आयेंगे ही नहीं और जो आयेंगे उन का कब रूख बदल जाये और वह फूट ले, कुछ ठीक नहीं ससुरो का।"

यहां तक कि यह राजनेता आजकल चुनाव के दौरान दलितों के उत्थान की दुहाई देते हुए नजर आते है, परन्तु होता कुछ नहीं। उनके दिये आश्वासन कभी साकार नहीं होते। बिसेसर की हत्या के बाद उसके गाँव में आकर दा साहब जब हरिजनों के प्रति सहानुभूति जताकर कुछ सुविधाएँ उपलब्ध करा देने का आश्वासन देते है तो बिसू का मित्र बिन्दा को बहुत गुस्सा आता है। वह सच्चाई को बिना किसी लिहाज के सामने रख देता है, "तीस साल से आप लोगों की बातें ही तो सुनते समझते आ रहे है। क्या हुआ आज तक पेट भरने के लिए अन्न नहीं है। आपकी बातें खाली.....। जैसे सुकुल बाबू तेसे आप। "बिन्दा के इन शब्दों से यह कहना आवश्यक नही कि बिन्दा एक साहासी युवक है जो अन्याय, अत्याचार और नेताओं के पाखण्डी व्यवहार को उदघाटित करने का अदम्य साहस रखता है। दलित विमर्श का यह पक्ष प्रशंसनीय कहना होगा। दलित समाज में युवाओं का ऐसा पढा लिखा तबका उभर रहा है जो परिणाम की चिन्ता किये बिना सत्य का उदघाटन ईमानदारी से कर रहा है। उसे इस बात का पता है कि कुछ लोग अवसरवादी होते है जो जीवित होकर भी सत्य का साथ देने के लिए तैयार नहीं होते।

वर्तमान राजनीति वोट की राजनीति तथा एक गन्दा, मौकाप्रस्त, वैमनस्य यपी षडयन्त्र बनकर रह गयी है। भले ही इसमें अप्पा साहब तथा लोचन सिह जैसे लोग है जो वास्तव में सुधार चाहते है किन्तु फिर भी उनकी अधिक आदर्श वादिता एवं अप्रत्यक्ष रूप से स्वार्थ पन भी किसी का भला नहीं कर सकता सिवाये अपने स्वयं के। पर दलितों की ऐसी भयावह तथा शोचनीय हालातों का जिम्मेवार यह अभिजात्य वर्ग ही तो है और खुद ही उसके ईमान पर उंगली उठाता है। वह इन गरीब तथा भूख से संत्रस्त लोगों को अपनी जूती की नोंक के नीचे भी रखना चाहता है, उनका खून पसीना निचोड देता है और ऐसी बेवशी की हीलत में जीने के लिए मजबूर भी करता है एवं उसके अस्तित्व पर उंगली भी उठाता है। सुकुल बाबू का यह कथन कि, "पता नहीं कहीं दा साहब ने ही तो बुलाया उलटा.– सीधा कुछ पढाकर .....कुछ दे–दिलाकर चुप करा दे। इन गरीबों का क्या है.....पैसा जेब में पडते ही आध दुख दर्द तो दूर हो जाता है इनका।"

किन्तु वर्तमानकालीन समाज व्यवस्था में एक तथ्य नजर अन्दाज नही किया जा सकता कि यहां विकास और आजादी के नारे अवश्य लगे है पर दलित ताति की आजादी तथा उसके विचार प्रकाशन और बोलने की स्वतन्त्रता पर किसी ने नहीं सोची। यह समस्या भी इस उपन्यास में उभर कर सामने आई है। चाहे भारतीय संविधान में अपने विचारों को स्वतन्त्र पूर्वक प्रकट करने का अधिकार है परन्तु हकीकत में कुछ अन्य रूप ही देखने को मिलता है। जैसे कि बिसेसर की उस आगजनी घटना के काफी सारे सबूत मिल जाते हैं तथा वह उन सबूतों को दिल्ली लेकर जाना चाहता है और सारी सच्चाई लोगों के सामने रखना चाहता है, पर इससे पहले कि वह कुछ करता उसकी जुबान को हमेशा के लिए बन्द कर दिया जाता है और उन निर्दोष और बंसहारा लोगों के सहायक की बेदर्दी व रहस्यमयी तरीके से मृत्यु हो जाती है। अफसोस की बात तो यह है कि कोई भी उसके असली हथियारे को ढूंढने व सजा दिलवाने की कौशिश नही करता। दा साहब जो खुद को गरीबों का मसीहा समझते है, एक सटे हुए राजनैतिज्ञ है। इस जाल की हर कडी उनकी उंगलियों के इशारों पर खुलती और सिमटती है। हर सूत्र के वे कुशल संचालक है। उनके संरक्षण में ही खोटे सिक्के (लखन सिंह) देश चलाने को तत्पर हैतथा खरे सिक्के (लोचन सिंह) एक तरफ फेंक दिये जाते है। इन सब बातों और बुराईयों के होते हुए भी दा साहब जैसे चतुर पाक साफ होकर बाहर निकल जाते है तथा इस जुल्म की चक्की में पीसते है– बिन्दा जैसे सताये व दारूण लोग। पीछे उनका परिवार यातनायें भुगतने हेतु रहता है । किन्तु उनकी चीत्कार, पुकार कोई भी सुनने वाला नहीं होता।

लेकिन दूसरी तरफ काशी जैसे लोग भी है जो सन्तुष्ट होकर राजनीति में प्रवेश करते है।दलितों को उत्थान में समर्थ करते है । क्योकिं जब बिहारी क्रोधित होकर आरि बिसू की मौत का उन्हे कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता तो वह तिलमिला उठता है। उन्हे लगता थ कि बिसू की मृत्यु का हादसा उनके लिए कारगर सि़द्ध होगा और हवा का रूख भी बदले गा। किन्तु ऐसा कुछ नही होता है। इस लिए बिहारी हरिजनों को और खास रूप से बिसेसर को कोसने लगता है। तब काशी बिसू की प्रशस्ति में कहता है कि, "तुमने तो उनके लिए कुछ किया भी नहीं, पर बिसू ने तो जब से होश सम्भाला, इन्हीं के लिए मरता खपता रहता थ। लेकिन पाँच साल पहले जब बिना वजह पकड कर उसे जेल में डाल दिया गया था तो सब सांस खींचकर बैठ गये। तब तो एंमरजैंसी नहीं थी, फिर भी किसी ने चूँ तक नहीं की।" काशी का यह कथन स्पष्ट करता है कि दलित वर्ग अब अपनी बुरी हालत से उत्थान की और अग्रसर होने लगे है किन्तु वर्षों से अपने आधिपत्य को अब खत्म होते और खुद से नित्न लोगों को बराबर व समान होते नहीं देख सकते। तभी तो दलितों में जागृति लाने की सजा बिसू को अपनी जान देकर चुकानी पडती है और उसके हथियारे का पता भी नहीं लगता और न जाने कितने बिसेसर इस तरह खत्म हो रहे है,। किन्तु बिसू का मित्र बिन्दा इसी तथ्य का उदघाटन करता हुआ पूरी हिम्मत के सराथ पुलिस को कहता है कि बिसेसर की हत्या की गयी है। बिन्दा नवयुवकों के व्यक्तित्व में औज लाने तथा उन्हे पूरे साहस के साथ सत्य का साथ देने के लिए प्रोत्साहित करके अपनी जाति व स्वयं की अस्मिता को प्रकट करने का सराहनीय कार्य करता है और भावी पीडी का मार्ग दर्शन भी करता है। वह यह भी बताता है कि बिसेसर एक जीवन्त तथा संवेदनशील युवक था, वह आत्म हत्या कर ही नहीं सकता । इस बात की पुष्टी इस कथन से हो जाती है, "जो जिन्दगी से इतना प्यार करता है .....अपनी ही नहीं, हर किसी की जिन्दगी को .....वह आत्म हत्या करेगा? नहीं नहीं साहब। उसे मारा गया है।" वह आगे कहता है," उसे क्यों मारा?" उसकी कनपटी की नसें फडकने लगी, "क्योकि वह जिन्दा था! जिन्दा रहने का मतलब समझते है ना आप? लोग भूल गये है जिन्दा रहने का मतलब। इसलिए पूछ रहा हूँ।" उसहा यह कथन सीधा प्रश्न चिह्न लगाता है, हमारी न्याय व्यवस्था पर तथा उसके संचालकों पर। हमारा संविधान कहता है कि सब लोग कानून के समक्ष समान है पर

जब एक गरीब के हक की बात आती है तो सारे रास्ते बन्द हो जाते है तथा अन्त में दा साहब जैसे लोगों की करामात से ही मरते भी गरीब लोग है। उनकी हत्या के आरोप भी उनके संगी साथियों पर लगाकर उनको ही फँसा दिया जाता है।

वस्तुतः अनत में भी यही होता है कि बिन्दा को ही बिना कुछ जान पडताल किये तथा अपनी जीत को पक्का करने हेतु बिसू का कातिल करार दे दिया जाता है। कोई इसके विरुद्ध कुछ नही करता। कारण यही है कि समाज में सत्य व न्याय के हक में उठने वाली आवाज को दबा दिया जाता है, या तो मार कर नही तो बिन्दा की तरह जेल में बन्द करके। किन्तु बिन्दा अपने कथनों से इस सत्य का उदघाटन करता है कि जिन्दा लोग भी सच का साथ न देकर मृत प्राय जीवन जाते है और अन्यायकारी व्यवस्था का अभिन्न अंग बन जाते है। बिन्दा की वाणी में दलित विमर्श का उत्कर्ष नजर आता है। यही बात महेश से पूछे गये एस.पी सक्सेना के प्रश्न से उभर कर बाहर आती है। महेश अपने को लज्जित महसूस करते हुए व कोसते हूए कहता है, "समझ लीजिए सर कि हम सब लोगों के जिन्दा रहने पर एक बडा सा प्रश्न चिह्न लगाकर वह मर गया।"

जहाँ पर इस प्रकार आम लोगों की आवाज घोट दी जाती है तो 'एकला चालो रे' गीत कितने कदम चला पाये गा किसी को भी? बिसू के जिस नाम को लेकर एक महीने पहले यहाँ से वहाँ तक तूफान मच गया था अब वही नाम सिमट कर या तो हीरा की आँखों से बहते हुए आँसुओं में रह गया था या बिन्दा की आँखों से बरसते हुए अंगारों में। यही हमारे इस सभ्य समाज के निम्न जाति के लोगों का त्रासदी पूर्व अन्त है। सभ्य तथा शिष्ट कहे जाने वाले इस समाज में मानव को मानव नहीं समझा जाता तथा उनके साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है और उन पर इस कदर अत्याचार होते हैं कि वे अपने लिए भी आवाज नहीं उठा सकते और अन्त में वही मरते हैं व वही पिसते हैं। उन्हे न तो बोलने का अधिकार दिया जाता है, न भर पेट खाने का। वे ऐसे ही गुमनामी में घुल कर रह जाते हैं और इनकी वाग डोर वापिस इन संसकारी तथा ज्ञानवान उच्च वर्ग लोगों के हाथ में आ जाती है।

किन्तु पीछले दशकों से दलित चेतना ने नया स्वरूप पा लिया है और यह दलित वर्ग अपने हालातों को बदलने के लिए साहित्य में शब्दों से ऊर्जा प्राप्त करके गुलामी तथा निरादर की जंजीरों को पिघलाकर बाहर निकल रही है तथा सम्मान व उन्नति की शिखरों को छूने के लिए प्रयत्न शील है; इसी की पृष्ठभूमि तैयार करता है मन्नू भण्डारी का 'महाभोज'।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. उपन्यास –'महाभोज'
   (मन्नू भण्डारी, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली)
2. 'विमर्श के विविध आयाम'
   (डॉ अर्जुन चव्हाण. वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)
3. 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'
   (ओमप्रकाश वाल्मीकी राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली)